LICENCE NO. A. 9

Licensed to post without prepayment.

॥ श्री ॥

वेदान्त तीर्थ श्री० पं० मायाराम वैष्णव

कृत

श्रीवटपत्यष्टक

भाषा टीका सहित

तन्त्री नाद कवित्तरस, सरस राग रत रङ्ग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अङ्ग॥
'विहारी'

टीका लेखक पं० राधाकृष्ण मिश्र "वीरेन्द्र"

प्रकाशक

ठाकुर दास सूरेका,

सलकिया, (हवड़ा)

प्रथमवार २००० } सम्वत १९८३ { मूल्य प्रेम

मेरा-वक्तव्य

सलकिया श्री सत्यनरायणजीके मन्दिरमें श्रद्धेय पं० माया-रामजी वेदान्त तीर्थका दर्शन पाया। यहीं परिडतजीका निज-निर्म्मित या रचित वटपत्यष्टक भी सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

परिडतजी प्रेमकी साक्षात् प्रतिमा, सच्चे सहृदय, खरे काव्य मर्म्मज्ञ और पूर्ण भगवत—भक्त हैं। इसी अष्टकके आधारपर कहा जा सकता है, कि आप मनके तत्कालीन झुकावके साथ अपने हृदय गत भावोंको नए दार्शनिक ढंगसे व्यक्त करनेमें पहुंचे हुए विशारद हैं। आप संस्कृत भाषा साहित्यपर पूरा आधिपत्य रखते हैं। साथ ही जीवनके चढ़ाव-उतार सरदी- गरमीके भी आप अनुभवी जान पड़ते हैं।

अष्टकानन्दमें निमग्न होते हुए मुझे भी मानवी प्रकृतिके आगे सिर झुकाना पड़ा है। इसीलिये अष्टकका भावार्थ लिखनेका दुस्साहस किया हूं। प्रत्येक श्लोकका भाव लगभग पहुंचके अनु-सार खोल दिया गया है। विशेष सुविज्ञ जानें। जो गीता-पाठी हैं, गीतामृत पानके रसिक हैं, उनके आगे निम्न श्लोक भी आया होगा। श्लोक यों है:—

उर्ध्व मूल मधः शाखमश्वत्थं प्राहुर व्ययम् ।
छन्दांसि हस्त पर्णानि यस्य वेद सवेद वित ॥

श्रीमद्भगवत गीता अ: १५ श्लो: १

अश्वत्थ पीपलको कहते हैं। यहां संसारका वर्णन प्रगाढ़ छाया वाले वृक्षके रूपमें है, जो प्रवाहसे अनादि और अवि-नाशी है। सार यही कि सारा संसार प्रपञ्च एक वृक्ष है। इसका मूल ब्रह्म है, जिसका आवास उच्चतम स्थान पर है। वहां तक पहुंचनेमें ज्ञानकी सीढ़ियोंकी आवश्यकता पड़ती है। इसी अध्यायके आगेके श्लोकोंमें संसार-वृक्षकी विशद व्याख्या है।

पाठक अब समझ गये होंगे, कि भगवान श्रीकृष्णने संसारका उल्लेख करते हुए पीपलके वृक्षको समता दी है। इस अष्टकमें प्रणेताने पीपलके बजाय वटका सहारा लिया है। इसी आशयसे वटपतिका अर्थ जगन्नियन्ता बोधित है। अस्तु।

वटपत्यष्टक सरस है। इसके पद पदमें लावण्य है। मधुरता है। आस्वादन पर ही वास्तविकता प्रगट होगी। अतः इसके लिये अरुचि होते हुए भी आप हठ करें। जितनी वार इसकी आवृत्ति होगी, नूतनताका स्रोत उमड़ पड़ेगा। "महा मोहागारेऽविमलित भवाब्धोहि पतितो" इत्यादिका पाठ करते हुए आप अगर भक्तिमें मस्त न हो जावें तो आपकी हमारी वाजो रही। हम जोर देकर कहेंगे, कि आपको भी "हृदयमेंधाम न कर लूं तो राम नाम नहीं" वाली प्रतिज्ञा याद आने लगेगी। इसे अतिशयोक्ति पूर्ण पा ही

नहीं सकेंगे। फिर इसकी सत्यता स्वतः प्रमाणित हो जावेगी। वकीलोंकी वहस या तर्क-वितर्कका समय ही नहीं आवेगा।

आपको भक्ति-सागरमें डूबना-उतराना पड़ेगा और सम्भवतः जभी आपके लिये कवियोंकी उक्तियां कोरी कल्पना ही न रह जावेंगी। आप भी सूर दादाके सुरमें सुर मिलाकर भक्ति मार्गमें भगवानसे मोरचा लेंगे और चौड़े मैदान—सारे आम प्रचारेंगे:—

हाथ छुड़ाए जात हो, निबल जानिके मोहि।
हिरदयसे जो जाहु तो, मरद बखानूं तोहि॥

"नारायण! मेरी शारीरिक निर्बलताके कारण ही आप हाथ झिटकके भागे जाते हैं, पर जरा मेरे हृदय धामसे भी तो निकल भागिये। फिर मैं क्या कोई इनाम दूंगा! नहीं, जभी आपकी मर्दानगी वखान की जावेगी।" अहा, कैसा रस है! कैसो माया है! कैसा आकर्षण है! कैसा चैलेञ्ज है? धन्य हो सूर दादा! धन्य हो जरा हृदय-धामकी खिड़कियोंपर भी कोई पहरुवा रख देना दादा! पाठक! सच्चे प्रेमियोंका यही नमूना है, यही आन है, यही मान है, यही शान है।

इसी अभिप्रायसे आपसे साग्रह अनुरोध करनेका साहस करता हूं, कि आप भी इस प्रेम गङ्गामें एक डुबकी लगावें। हलकी ही सही। घोंघे या घड़ियाल चूं तक नहीं कर सकेंगे।

अष्टक अष्टक ही है। प्रणेताने स्थल २ पर एक और भी चमत्कार रख छोड़ा है और वह है पाठान्तरका भेद। अगर पाठक

"महामोहागारेऽविमलित भवाब्धौहि पतितो। न जानेऽहं गोविन्द तव महिमानं सुख करम् ॥ अतः स्वामिन्मामुद्धर निखिल दुःखाद्वरदतं।" के स्थानपर "महाज्ञानागारेऽविमलित भवाब्धौहिपतितो, न जानेऽहं दिव्य तवच महिमानं सुखकरम्। रमा स्वामिन्मामुद्धर निखिल दुःखाद्वरदतं" पढ़ें तो कुछ और ही आनन्द आवेगा। इसी तरह ५ वें श्लोकका दूसरा पाद "न सारं मन्येहं सतत सुसुखं यत्र चचिरम्", और छठेंका प्रथम पाद "कदा मोक्ष्ये स्वामिश्च सुसुखकर श्रद्धि रहितः "पाठ किया जावे तो एक विचित्र ही रसका आविर्भाव होता है। इसे तो सहृदय ही जानें। मेरी तो यह निरी प्रगल्भता है। अस्तु।

अन्तमें श्री० सेठ ठाकुर दासजी सूरेकाको हार्दिक धन्यवाद देते हुए अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं,जिन्होंने इसे प्रकाशित करनेका भार-वाहन सहर्ष स्वीकार किया है। विश्वास है भगवत प्रेमी इससे लाभ उठावेंगे। शुभम् भूयात्।

श्री हनुमान पुस्तकालय
सलकिया (हवड़ा)
फाल्गुण कृष्ण १४।८३

राधाकृष्ण मिश्र विशारद
"हिन्दी-भूषण"
भोजापुर (बलिया)

—❀❀—

❀ श्री गणेशायनमः ❀

श्री वटपत्यष्टक भाषा टीका सहित प्रारम्भः

(मूल)

भवं सृष्ट्वा देवः पुनरपि निविष्टो भव मुखे।
सहस्रास्यो भूत्वा फल मनु भवन्शास्तित मुत॥
परं देवैः सेव्यं निर वधिर संसुश्रुति सुखम्।
नमामि श्रीनाथं भव भय हरं श्री वटपतिम्॥१॥

भावार्थ :—

प्रभो! आप पूर्ण काम हैं। किसी आवश्यकता विशेषकी पूर्त्तिके लिये आप संसारकी रचना नहीं करते, प्रत्युत आप संसार की रचनासे अपनी लीला प्रदर्शित करते हैं। इसके लिये आपको लोकवत् चेष्टाका संकल्प ही इष्ट है। इसी लिये आप संसार को सरजके, संसारी शरीरमें प्रविष्ट होकर सहस्रों मुखों द्वारा संसारके फलाफलका अनुभव किया करते हैं। साथही अज्ञान देहधारी जीवों-पर भी आप ही शासन कर रहे हैं। आपकी महिमा अगम्य है।

आप ही स्रष्टा, आपही संसार देहीमें प्रविष्टा, आप ही शुभाशुभ फलोंके भोक्ता देहधारी और आप ही शासक भी हैं। देवता आपकी सेवा करते हैं। आपके यश-गानसे श्रुतियों (वेद और कान) को सुख प्राप्त होता है। अतः हे भव-भय-भञ्जन श्रीनाथ वटपति ! आपको प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

(मूल)

सदानन्दं सत्यं भव विलय कारं प्रभुवरं ।
निजानन्दं यस्मिन् त्रिभुवन मिदं कल्पित परम् ॥
पुनस्तस्यज्ञानं रजतमिव शुक्तौ भ्रम हरं ।
नमामि श्रीनाथं भव-भय हरं श्रीवट पतिम् ॥२॥

भावार्थः—

भगवन् ! आप सदा आनन्द स्वरूप होते हुए भी अपने विहारके लिये संसारको बनाते और फिर उसे नष्ट करते हैं। आप ब्रह्मादि देवोंमें श्रेष्ठ हैं। आप अपने ही आनन्दमें आनन्द रूप हैं। आपका सच्चा ज्ञान न होनेके कारण ही यह दुःखमय जगत् आपमें कल्पित हुआ प्रमाणित होता है, किन्तु फिर आपका ज्ञान होते ही सीपमें चान्दीके भ्रमके समान यह भ्रम नष्ट भी हो जाता है। अर्थात् जिस प्रकार सीपको देखकर उसीमें अज्ञानतासे चांदी का भ्रम हो जाता है, किन्तु असली परखपर सीप, सीप ही रह जाता है और चांदीका भ्रम सर्वथा दूर हो जाता है। इसी तरहसे

जब आपका ज्ञान हो जाता है, तो संसाररूपी भ्रम दूर हो जाता है। अतः हे भव-भंजन वटपति श्रीनाथ! आपको प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

(मूल)

पुराणो यं देवो निवसति वटेशस्तनु भृतां।
सुहृद्देशे द्रष्टा विदित महिमा सौख्य सदनम् ॥
सदा वेदैर्वन्द्यः सुर मुनि सुसेव्यो जगतितं।
नमामि श्री नाथं भवभय हरं श्रीवटपतिम् ॥३॥

भावार्थ:—

सुरेश! आप ब्रह्मादि देवोंसे भी पुराने हैं। प्रत्यक्ष रूप होते हुए भी प्राणियोंके हृदय-देशमें निवास करते हैं। प्राणी मात्रके उत्तमानुत्तम, भले बुरे मनोभावोंको जानते हैं। वेद सदा आपकी वन्दना करते हैं। देवता और मुनि इस संसारमें आपकी सेवा किया करते हैं। अतः हे भव-भय भंजन वटपति श्रीनाथ! आपको प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

(मूल)

महामोहागारेऽविमलित भवाब्धौहि पतितो।
न जानेऽहं दिव्यं तव च महिमानं सुख करम् ॥
अतः स्वामिन्मामुद्धर निखिल दुःखाद्वरदतं।
नमामि श्रीनाथं भवभय हरं श्रीवटपतिम् ॥४॥

भावार्थ :—

गोविन्द ! मैं श्दा मोहके आगार अपावन संसार-समुद्र में लुढ़का हुआ हूं। आकी सुखद दिव्य महिमासे निरा कोरा हूं। अतः हे स्वामी ! संसारके चिंताओं (दैहिक, दैविक और भौतिक) से रक्षा करते हुए मरा उद्धार कीजिये। भव-भय भंजन वटपति श्रीनाथ ! आपको प्रणाम करता हूं॥ ४॥

(मूल)

असारे संसारेऽरमण भवने क्लेश बहुले।
न सारं किञ्चिद्वे ह्मि सतत सुखं क्व चचिरम्॥
अतस्सारागारस्त्व मसि नतु विश्वं सुख दतं।
नमामि श्रीनाथं भवभय हरं श्रीवटपतिम्॥५॥

भावार्थ :—

विभो ! इस असार नाना प्रकारके क्लेशोंसे युक्त अरण्य संसार भवनमें कुछ भी सार नहीं है। और तो क्या, यहां चिर स्थायी सुखका भी तो नामो निशां नहीं। विश्वम्भर ! केवल आप ही यहां सारके आगार हैं, सुन्दर सुखद हैं। यह संसार सुखद थोड़े ही है ! हे भव-भयभञ्जन वटपति श्रीनाथ ! आपको प्रणाम करता हूं॥ ५॥

(मूल)

कदा मोदयेहंना थसुसुखकर श्रद्धि रहित :।
न जानेऽहं ज्ञानं श्रवण मनने कर्म च शुभम्॥

न योगं सांख्यं वेद्मिन विनय युक्तो रमणा तं
नमामि श्री नाथं भव भय हरं श्रीवटपतिम्॥६॥

भावार्थ :—

नाथ ! क्या मुझे मोक्ष मिल सकेगा ! मैं तो उसके रास्ते भटक गया हूं। सुखकर श्रद्धासे (तीन कोस दूर हूं।) इसके अलाव भी हे रमण ! ज्ञान, श्रवण मनन, शुभ कर्म्म, सांख्य या वेद कु कुछ भी नहीं जानता ! (यह तो अलग रहे,) विनय युक्त (नम्र भी नहीं हूं। (खासा उद्दण्ड हूं।) अतः हे वटपति भव-भय भञ्जन श्रीनाथ। आपको प्रणाम करता हूं॥ ६॥

(मूल)

निराकारं स्वामिञ्जयतु तवरूपं श्रुतिनुतं।
अहंन्तुत्वाम्मन्ये कर चरण युक्तं गुणनिधिम्॥
शिवेशः श्रीशोवा भवतु यथेच्छं वरदतं।
नमामि श्रीनाथं भव भय हरं श्रीवटपतिम्॥७॥

भावार्थ :—

भगवन् ! आपके निराकार रूपकी जय हो, जिसका गुणानु वाद वेद करते हैं। यद्यपि यह सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु स्वामी ! आपक गुणनिधि युक्त हाथ पैरों वाला साकार रूप ही मुझे प्रिय है। भले ही आप कर-चरण वालोंमें शिव-पति शिव या लक्ष्मी-पति विष्णु हों

मेरा इससे कुछ मतलब नहीं। अतः हे वटपति भव-भय-भञ्जन श्रीनाथ ! आपको प्रणाम करता हूं ॥ ७ ॥

(मूल)

भवे यत्सद्रूपं तदपि भवदीयं सुविभवं।
न विश्वस्मिन् रम्यं किमपि जरठे दुःख सदने ॥
अतो मिथ्या सर्वं भवति न भवान्नाथ तमहं।
नमामि श्रीनाथं भव भय हरं श्रीवट पतिम्॥८॥

भावार्थ :—

इस पुराने संसारमें जितने सद्रूप हैं, सभी आपके सुविभव हैं। जगत् दुःखका घर है। यहां कुछ भी सुन्दर नहीं; सब कुछ मिथ्या है। केवल नाथ ! आप ही सुन्दर सुखद और सत्य हैं। इसलिये हे वटपति श्रीनाथ संसारके दुःखोंको दूर करनेवाले ! आपको प्रणाम करता हूं ॥ ८ ॥

(मूल)

विभातु तन्नाथ मदीय मानसे,
त्वदीय रूपं सुमनोहरं विभो।
अजादि देवैर्विमली कृतं मनः,
सुचिन्तनेनानु दिनं हि यस्यते ॥ ९ ॥

भावार्थ :—

करुणामय ! आपका सुमनोहर रूप मेरे हृदय-मानसमें घर

बनावे। जिसके रात-दिन ध्यान करते रहनेसे अजादि (ब्रह्मा इन्द्र आदि) अपना मन शुद्ध किया करते हैं ॥ ९ ॥

(मूल)

मर्त्यानां रतिदं निरन्तरं तत्,
मायाराम कृताष्टकं वटेशे।
भूया द्वैजन पे सतेन तुष्टः,
स्यादेवोऽवतुनो जनाश्च मेशः ॥ १० ॥

भावार्थ :—

भगवत-प्रेमी श्रीमायारामजीका यह वटेशाष्टक वटेशमें प्रीति दे, जो वटेश निरन्तर प्राणियोंका लालन पालन किया करते हैं। साथ ही इस स्तवनसे श्री वटेश भगवान प्रार्थी पर प्रसन्न होवें और उनको रक्षा करें ॥ १० ॥

(मूल)

व्याधि काले च मोहान्धे मृत्यु काले पुनः पुनः।
न विद्यते भयं तस्य यः पठतिहि नित्यशः॥ १[illegible] ॥

भावार्थ :—

जो व्याधिके समय, मोहके अन्धकारमें पड़े रह[illegible] के समय स्मरणावस्थामें वार वार इस अष्टकको पढ़ता [illegible] है; उसे दुःखोंका कुछभी भय नहीं रह जाता।

॥ इति श्री पं० मायराम कृत वटपत्यष्टकं समाप्तम् ॥

चित्रगुप्त प्रेस,—३७, काटन स्ट्रीट कलकत्ता।

ग्राहक नं. अज्ञात

श्रीयुत

122. Sri Mumuksh-Bhawan,
Assighat, Kashi, Varanasi